Vol. 3, No. 2 (July 2014) P 63-73 Sangeet Galaxy
ISSN: 2319-9695

भारतीय संगीत के देवर्षि

डॉ0 लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या'
एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
संगीत एवं नाटय विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
बिहार

भारतीय संगीत के शास्त्रकारों की श्रृंखला का आरम्भ भरत से ही माना जाता है। यद्यपि भरत का 'नाट्य शास्त्र' मूलतः संगीत का ग्रन्थ नहीं है, पुनरपि इसमें नाट्य निर्दिष्ट संगीत का विश्लेषण ही मूलतः संगीत के विश्लेषण का आधर बना। इसके बाद संगीत–ग्रन्थों की लम्बी श्रृंखला प्राप्त होती है, यथा – नारदकृत 'नारदीय शिक्षा', 'संगीत मकरन्द', 'पंचम सार संहिता', 'राग सागर', 'चत्वारिंशत्रागनिरूपणम्', दत्तिलकृत 'दत्तिलम्', मंतगकृत 'वृहद्देशी', सोमेश्वर देवकृत 'मानसोल्लास', जगदेकमल्लकृत 'संगीत चूड़ामणि', नान्यदेवकृत 'भरतभाष्यम्', शारंगदेवकृत 'संगीत रत्नाकर', पार्श्वदेवकृत 'संगीत समयसार', सुधकलशकृत 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार', महाराणा कुम्भाकृत 'संगीतराज', रामामात्यकृत 'स्वरमेलकलानिधि', क्षेमकर्णकृत 'राग माला', दामोदर पंडितकृत 'संगीत दर्पण', पं0 अहोबलकृत 'संगीत परिजात', पं0 लोचनकृत 'राग तरंगिणी', श्रीनिवासनकृत 'रागतत्त्वविवोध', हृदयनारायणकृत 'हृदयकौतुक', 'हृदय प्रकाश', व्यंकटमखीकृत 'चतुर्दण्डीप्रकाशिका' इत्यादि। इन सभी शास्त्रकारों ने अपने–अपने ग्रन्थ का आरंभ देवी–देवताओं की स्तुति व पूर्वाचार्यों को स्मरण कर किया है, भरत ने 'नाट्यशास्त्र' में – ब्रह्मा एवं शिव का स्मरण इस प्रकार किया है–

पप्रणम्य शिरसा देवौ पितामह महेश्वरौ।
नाट्यशास्त्रा प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा यदुदाहृतम्।।

ऐसे ही, भारतीय संगीत शास्त्रों में शास्त्रकारों ने अनेक देवी देवताओं का उल्लेख किया है जिनका वर्णन यहाँ किया जा रहा है –

ब्रह्मा –

सम्पूर्ण 'ब्रह्माण्ड' के सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा हैं। "महेश्वर द्वारा ब्रह्मा एवं विष्णु की सृष्टि किए जाने के बाद ब्रह्मा ने ब्रह्माण्ड की सृष्टि की और उसके कुछ समय बाद इस जिम्मेदारी से तंग आकर ब्रह्मा ने महेश्वर से प्रार्थना की। परिणामस्वरूप नन्दिकेश्वर प्रकट हुए और व्यावहारिक प्रदर्शन द्वारा ब्रह्मा को 'नाट्यवेद' की शिक्षा दी और कहा कि इससे विश्रान्ति मिलेगी। बाद में पाँच शिष्यों समेत एक मुनि उपस्थित हुए। ब्रह्मा ने उन छः व्यक्तियों को नाट्यवेद सौंपकर उन्हें नाट्यवेद का भार ग्रहण करने और मानवों को उसके प्रचार का आदेश दिया। मुनि और उनके शिष्यों ने नाट्यवेद का व्यावहारिक अध्ययन कर विधिवत् रस–भाव–अभिनय समेत नाट्य का प्रयोग प्रस्तुत किया। इस पर ब्रह्मदेव ने सन्तुष्ट होकर मुनि और उनके शिष्यों को भरत की सार्थक उपाधि प्रदान की, जिसका अर्थ होता है (नाट्यवेद का) भार वहन करने वाला। यह कथा शारदातनय की उक्ति है।

शारदातनय के ग्रन्थ 'भावप्रकाश' के अनुसार ब्रह्मा ने केवल आठ रसों की सृष्टि की थी –

'तस्मान्नाट्यरसा अष्टाविति पद्मभुवो मतम्'[1]

शारदातनय के अनुसार भरत से पूर्व नाट्य की व्याख्या करने वाले छः नामों (नन्दिकेश्वर, ब्रह्म, वासुकि, नारद, व्यास एवं आँजनेय) में एक ब्रह्म भी हैं।

अभिनवगुप्त नाट्यशास्त्र के तीन रचनाकारों का उल्लेख करते हैं, वे हैं – सदाशिव, ब्रह्म एवं भरत।[2]

जब इन्द्र सहित सभी देव ब्रह्म के पास जाकर किसी ऐसे खेल की जिज्ञासा प्रकट की जो दृश्य और श्रव्य दोनों हो, तब ब्रह्मा ने सब वेदों का स्मरण करके, बहुत चिन्तन के बाद ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रसों को लेकर 'नाट्य–वेद' नामक 'पंचम वेद' की रचना की। वे नाट्यवेद के आदि निर्माता थे। 'भरत' एक जातिवाचक संज्ञा बन गया था (द्रष्टव्य नाट्यशास्त्र, अध्याय 17) और इस दृष्टि से हम ब्रह्म को 'आदि भरत' कह सकते हैं। भरत ने कहा है – 'ब्रह्मा द्वारा निर्मित नाट्यवेद के उद्भव को सुनो – 'श्रूयतां नाट्यवेदस्य संभवो ब्रह्मनिर्मितः'।[3]

इसके पूर्व भरत ने नाट्यशास्त्र के आरंभ में ही कहा है कि ब्रह्म द्वारा रचित नाट्यशास्त्र को कहता हूँ – 'नाट्यशास्त्र प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा यदुदाहृतम्'।[4]

नाट्य में कथावस्तु एवं अभिनय के साथ–साथ गीत, वाद्य तथा नृत्य का भी समुचित स्थान है और नाट्यशास्त्र इस सम्पूर्ण कला का संगम है।

'एकतन्त्री' वीणा को 'ब्रह्मवीणा' भी कहा गया है जिसके निर्माता ब्रह्मा हैं। इसे 'आदि वीणा' भी कहते हैं। यजुर्वेद में श्रम–विभाजन के आधार पर चार ऋत्विजों को होता, अर्ध्वयु, उद्गाता तथा ब्रह्मा कहा गया है। सृष्टि–उत्पादक ब्रह्मा को ऋग्वेद तो स्थिति प्रवर्तक विष्णु को यजुर्वेद स्वरूप कहा गया है।

ब्रह्मा ने अपने मुख से सम्पूर्ण वेदों एवं शास्त्रों की उत्पत्ति की।[5]

ब्रह्मा को अद्वैत वेदान्त में 'ब्रह्म' संज्ञा दी गई है और इसी ब्रह्मा का वैष्णव विष्णु से, शैव शिव से तथा शाक्त शक्ति से तादात्म्य संबंध जोड़ते हैं।[6]

ब्रह्मा के दस मानस पुत्र हुए – मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु तथा नारद।[7]

संगीत में बह्म ताल की भी रचना की गई है।

सरस्वती –

'सरस्वती' संगीत की अधिष्ठात्री देवी कही गई हैं। इनके संबंध में भिन्न–भिन्न पुराणों में भिन्न–भिन्न सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। प्रमुख रूप से ब्रह्म वैवर्त, मत्स्य, पद्म, वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराण में सरस्वती की उत्पत्ति सम्बन्धी सामग्री पायी जाती है।

ब्रहमवैवर्त पुराण में अलग–अलग स्थानों पर सरस्वती विषयक सामग्री प्राप्त होती है। इस पुराण के तीसरे अध्याय 'ब्रह्मखण्ड' में पौराणिक देवीत्रय (सरस्वती, महालक्ष्मी तथा दुर्गा) की उत्पत्ति परमात्मा से मुख से कही गई है।[8]

पुनः इसी पुराण में एक अन्य स्थान पर इन्हें श्रीकृष्ण के मुख से उत्पन्न शक्तिस्वरूपा कहा गया है।[9]

इसी पुराण के अनुसार 'आदि काल में आत्मा निष्क्रिय एवं तटस्थ थी। परन्तु कालान्तर में उसे सृष्टि की इच्छा हुई। फलतः उसने स्त्री एवं पुरूष का रूप धारण किया। उसका यह स्त्री रूप 'प्रकृति' कहा जाता है। यह प्रकृति रूप भी श्रीकृष्ण की इच्छानुसार दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती तथा सावित्री के रूप में 'पंचधा' हो गया। इस प्रकार ये प्रकृति के पाँच रूप हैं जिनमें सरस्वती भी एक हैं। इन्हीं पंच प्रकृतियों के आधार पर संसार की उत्पत्ति मानी गई है।[10]

पुराणों में सरस्वती को ब्रह्मा[11] तथा विष्णु[12] की पत्नी माना गया है।

मत्स्यपुराण में सरस्वती को ब्रह्मा से उत्पन्न कहा गया है। ब्रह्म के दस पुत्र हुए परन्तु अपनी सृष्टि रचना के भार के कारण गायत्री का जप करने लगे। फलतः उनके अर्ध–शरीर से सावित्री की उत्पत्ति हुई जिस का शतरूप, सावित्री, गायत्री, सरस्वती तथा ब्राह्मणी के रूप में विभिन्न नामकरण हुआ।[13]

मत्स्यपुराण में ही ब्रह्मा के द्वारा लक्ष्मी, मरूत्वती, साध्या तथा विश्वेशा के साथ सरस्वती की उत्पत्ति कही गई है।[14]

ऐसा ही वर्णन 'पद्मपुराण' में भी है।

वायु पुराण के अनुसार, ब्रह्मा ने मानस पुत्रों की सृष्टि की परन्तु पुत्रों के सांसारिक प्रपंचों में अनिच्छा के कारण ब्रह्मा चिन्तित एवं क्रोधजनित निराश अवस्था में थे। इस क्रोध से एक सूर्य के भाँति तेजवान् पुरूष की उत्पत्ति हुई जिसका आधा शरीर पुरूष तो आधा स्त्री रूप था। उक्त पुरूष के स्त्री–रूप के श्वेत एवं कृष्ण भागों में से यही श्वेत स्वाहा, स्वधा, महाविद्या, मेधा, लक्ष्मी, सरस्वती तथा गौरी के रूप में जानी जाती है।

इसी पुराण में एक अन्य स्थान पर वर्णन है कि ब्रह्मा द्वारा सरस्वती की उत्पत्ति विश्वरूप के रूप में की गई। यह उनकी मानसी सृष्टि एवं प्रकृति रूप थी।[15]

'ब्रहमाण्ड पुराण' में सर्वप्रथम पुरूष तथा स्त्री–रूप में एक दम्पति–प्रसव का वर्णन मिलता है, उसका उत्पत्ति स्थल महालक्ष्मी है। उपर्युक्त अभिप्राय से महालक्ष्मी ने सर्वप्रथम तीन अण्डों को उत्पन्न किया। एक अण्डे से ब्रह्मा की श्री के साथ, दूसरे से सरस्वती की शिव के साथ तथा तीसरे से विष्णु की अम्बिका के साथ उत्पत्ति हुई।[16]

पुराणों में ब्रह्मा को 'प्रजापति कहा' गया है। यह ब्रह्मा सर्वशक्तिमान परमात्मा तथा महालक्ष्मी से समुद्भूत है। जिस प्रकार सर्वशक्तिमान परमात्मा से ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश तीनों देवों की उत्पत्ति मानी जाती है।[17]

उसी प्रकार लक्ष्मी, सरस्वती तथा अम्बिका तीन देवियों की उत्पत्ति महालक्ष्मी से मानी गई है।[18]

ऋग्वेद तथा अन्य वेदों में सरस्वती के विभिन्न रूप मिलते हैं। ब्राह्मणों में आकर उसका वाक् से तादात्म्य स्थापित हो जाता है।[19]

पुराणों में इस देवी के विविध रूप मिलते हैं, यथा – वाक्, वाग्देवी, ज्ञानाधिदेवी, वक्तृत्वदेवी आदि।[20]

वाक् की उत्पत्ति ब्रह्मा के मुख से कही गई है।[21]

मत्स्य पुराण में सर्वप्रथम सरस्वती का उल्लेख मिलता है तथा मार्कण्डेय पुराण में उन्हें संगीत की अधिष्ठात्री होने का उल्लेख है।

ब्रह्मा के चारों मुख चारों वेदों का प्रतिनिधित्व करते हैं – The four faces of Brahman represent the four Vedas eastern Rigveda, the southern Yajurveda, the Western Sam Veda and the northern Atharva Veda.[22]

और सरस्वती ब्रह्मा के चारों मुखों से प्रसूत चारों वेदों का प्रतिनिधित्व करती हैं।[23]

सरस्वती को 'कच्छपी' वीणा भी कहा गया है – *'सरस्वत्यास्तु कच्छपी'*। आराध्या सरस्वती के नाम का एक राग 'सरस्वती' भी है।

कृष्ण –

'कृष्ण' शब्द की उपस्थिति से ही सम्पूर्ण परिवेश संगीतमय होता प्रतीत होने लगता है। बाँसुरी की धुन, गोपियों की रून–झुन तो ग्वाल–बालों का चपल दृश्य उपस्थित हो जाता है।

'भागवत' महापुराण के महानायक कृष्ण की संगीतज्ञता सर्वविदित है। यह ज्ञान उन्हें प्रकृति से प्राप्त हुआ –

'चकोर क्रौंचचक्राह्वभारद्वाजांश्च बर्हिणः।
अनुरौति स्म सत्वानां भीतवद् व्याघ्रसिंहयोः।।[24]

कही वंशी–वादन तो कहीं तान छेड़ते हुए उनका वर्णन है –

'क्वचिद् वादयतो वेणुं क्षेपणैः क्षिपतः क्वचित्।
क्वचिद् पदैः किंकिणीभिः क्वचित् कृत्रिमगोवृषैः।।[25]

श्रीकृष्ण को 'वंशी' प्रिय वाद्य होने के दो कारण हो सकते हैं। एक तो सामगान में सामगायकों का प्रथम स्वर वंशी (वेणु) का मध्यम स्वर है –

'यः सामगानां प्रथमः स वेणोमध्यमः स्वरः'[26]

तथा सामान्य जीवन में लोक संगीत जितना प्रभावशाली है उतना शास्त्रीय संगीत नहीं, और वंशी इसमें अधिक सक्षम है। 'भागवत' में 'वेणुगीत' नामक एक पूर्ण अध्याय ही है। कृष्ण की वंशी का प्रभाव केवल मानव ही नहीं अपितु सम्पूर्ण सांसारिक वस्तुओं पर पड़ा –

'नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीतमावर्त लक्षित मनोभव भग्नवेगाः।[27]

कृष्ण को विष्णु का 'षोडशकलावतार' या 'पूर्णवतार' माना जाता है।

कृष्ण संगीत की तीनों विधाओं गायन, वादन एवं नृत्य के मर्मज्ञ थे। महाभारत में कृष्ण की लीलाओं और उनके आलौकिक चरित्र का वर्णन है। इसी महाभारत के खिल भाग 'हरिवंश पुराण' में कृष्ण के संगीत–संबंधी योगदान की वृहत् चर्चा है। इस पुराण के विष्णु पर्व के 89 अध्याय में उल्लेख है कि पिण्डारक तीर्थ के अन्तर्गत कृष्ण द्वारा 'छालिक्य' का आयोजन हुआ जहाँ नारद, प्रद्युम्न, अनिरूद्ध, साम्ब, बलराम के साथ–साथ रम्भा, उर्वशी, हेमा, तिलोत्तमा, मिश्र केशी, मेनका आदि भी उपस्थित थीं। यहाँ 'छालिक्य गेय' के आयोजन की आज्ञा कृष्ण ने दी –

'आज्ञापयाभास ततः स तस्यां निशि प्रहृष्टो भगवानुपेन्द्रः छालिक्य गेयं बहु–सन्निधानम् यदेव गान्धर्वमुदाहरन्ति।[28] छालिक्य गेय समूह में सम्पन्न होने वाला एक प्रमुख गान्धर्व भेद है।

इस छालिक्य–गान में महर्षि नारद ने षड्ज ग्राम रागों की वीणा पर अवतारणा की, कृष्ण ने वंशी बजाकर 'हल्लीसक' का आंरभ किया, अर्जुन मृदंग–वादन कर रहे थे, अन्य वाद्यों पर निपुण अप्सराएँ संगत कर रही थी। इसके बाद 'आसारित' के प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ आसार प्रस्तुत किए गए। (जिसे भरतमुनि ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में भी वर्णित किया है) इस छालिक्य में भाग लेने वाले सभी जनों को कृष्ण ने पान का बीड़ा देकर सम्मानित किया – 'ताम्बूलयोगाश्च'।[29]

यह 'छालिक्य' नामक गान्धर्व कृष्ण द्वारा ही स्वर्ग से पृथ्वी पर लाया गया। इस कला को सर्वप्रथम प्रद्युम्न ने सीखा और प्रयोग किया।[30]

'हरिवंश पुराण' के प्रवक्ता महिर्ष वैशम्पायन के अनुसार, एक बार देवलोक में ब्रह्मा की सभा में 'छालिक्य गान्धर्व' के आयोजन में राजा रेवत इतने तन्मय हो गए कि चार हजार युगों की लम्बी अवधि उन्हें एक दिन मात्र प्रतीत हुई।[31]

इस कला को कृष्ण के अतिरिक्त नारद और प्रद्युन्न ही जानते थे क्योंकि इसके स्थान (मन्द्र, मध्य, तार), मूर्च्छनाओं तथा विधानों का ज्ञान तपपूर्वक ही प्राप्त किया जा सकता है –

'शक्यं न छालिक्यमृते तपोभिः स्थाने विधानान्यथमूर्च्छनासु,[32]

इसमें देव, गन्धर्व एवं महर्षि गण ही समर्थ हैं।

यह छालिक्य गान्धर्व अथवा गेय चॉदनी रात में समूह में आयोजित होता है। इसमें सर्वप्रथम वीणा–वादन पर षड्जग्रामरागों की स्थापना दो प्रकार से होती है। एक मात्र वीणा–वादन द्वारा और दूसरा वीणा–वादन के साथ गायन द्वारा। नारद ने वीणा को ग्रहण कर वीणा–वादन के साथ विशिष्ट पद भी गाये थे। यहॉ उनकी महती वीणा न होकर 'वल्लकी' वीणा का उपयोग हुआ। इस वीणा–वादन के साथ षड्ज ग्रामरागों की अवतारणा के बाद कृष्ण ने वंशी–वादन द्वारा 'हल्लीसक' का आरंभ किया।

हरिवंश पुराण की हिन्दी टीका (गीता प्रेस, गोरखपुर) में षड्जग्रामों के छः नाम बताए गए हैं – मध्य, शुद्ध, भिन्न, गौड़, मिश्र और गीत। टीकाकार ने इन्हें षड्जग्रामिक छः नाम न मानकर रागों (षड्जग्रामराग) के छः स्थान माना है।[33]

'छालिक्य' में नारद द्वारा छः षड्ज ग्राम–रागों की अवतारणा का उल्लेख है परन्तु भरत मुनि ने ऐसे ग्राम रागों का कोई उल्लेख नहीं किया है। यद्यपि नारद के संगीत–ग्रन्थों में ऐसे छः ग्राम रागों का उल्लेख है जो वर्त्तमान में भी प्रचलित हैं – भैरव, मालकौशिक, हिन्दोल, दीपक, श्री तथा मेघ – मल्हार –

'मूलभूतास्तु षड्ग्रामा मत्तएव समुद्भवा।
भैरवः प्रथमः ख्यातो द्वितीयो मालकौशिकः।।
तृतीयश्चाथ हिन्दोलश्चतुर्थो दीपकस्तथा।
श्रीरागः पंचमो ज्ञेयो मेधमल्हार षष्ठकः।[34]

शारंगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर' में भी इस त्रैलोक्य दीपक के श्लोक पाठ–भेद से अनेक स्थानों पर दृष्टिगोचर होते हैं।

यह हल्लीसक आभीर जाति का लोकनृत्य न होकर परम्परागत (नाट्याचार्यों द्वारा निर्दिष्ट) है –

'अथ हल्लीशः। इल्लीश एक एवांकः सप्ताष्टौ दश वा स्त्रियः। वागुदातैकपुरूषः कैशिकी वृत्तिरूज्ज्वला। मुखान्तिमौ तथा सन्धी बहुताल लयस्थितः।। यथा – केलिरैवतकम्।[35]

अर्थात् हल्लीसक में एक अंक होता है, सात, आठ या दस स्त्रियाँ होती हैं। एक उदात्त वचन वाला पुरूष होता है। इसमें उज्ज्वल कौशिकी वृत्ति, मुख एवं निर्वहण नामक दो संधियाँ एवं अनेक प्रकार के ताल एवं लय का प्रयोग होता है।

यह 'हल्लीसक' या 'हल्लीस' लोक–नृत्य न होकर नाट्य का एक शास्त्रसम्मत भेद है। इसे उपरूपक भी कहा गया है। 'हल्लीसक' छालिक्य गन्धर्व का ही एक अंग है।

छालिक्य गान्धर्व की तीन जातियाँ – कुमार अथवा सुकुमार जाति, गान्धर्व जाति एवं देवगानधार हैं। इसमें दवेगान्धार को 'श्रृंवणामृतम्' अर्थात् सुनने में अमृततुल्य कहा गया है। इस जाति पर आधारित 'गंगावतरणम्' नामक गेय की प्रस्तुति का उल्लेख मिलता है जिसमें छालिक्य के अन्तर्गत गान्धार ग्राम पर आधारित जातियों तथा रागों का भी प्रचलन कृष्ण ने किया और इसका प्रचार प्रद्युन्न द्वारा हुआ। *'आ गान्धार ग्राम रागं गंगावतरम् तथा। विद्धमासारितं सम्यं जगिरे स्वर संपदा।* (24/93) स्पष्ट है कि छालिक्य एक विशिष्ट गान्धर्व प्रकार था।

कृष्ण को 'रास' का भी प्रवर्त्तक आचार्य माना गया है और इन्हें 'नटवर' भी कहा जाता है। कृष्ण रास–नृत्य के समस्त अंगों के मर्मज्ञ थे, विशेष अवसरों पर वे रास के ताण्डव एवं लास्य भेदों का भिन्न–भिन्न रीति से प्रयोग करते थे। 'भागवत' में कालिय–दमन के प्रसंग में कृष्ण के ताण्डव नृत्य का वर्णन करते हुए कहा गया है।[36]

'तच्चित्रताण्डव विरूग्ण फणातपत्रो
रक्तं मुखैरूरू वमन् नृप भग्नगात्रः।[37]

'ताण्डव' इन्द्र की रौद्र भावनाओं का द्योतक है तो 'रास' कृष्ण की श्रृंगारिक भावनाओं का उद्‌गम है। 'रास पंचाध्यायी' (व्यासदेव) मे इसका वर्णन है। 'महारास' में कृष्ण इतनी कुशलतापूर्वक तीव्र गति से नृत्य करते थे कि हर गोपी को यह आभास होता था कि कृष्ण मेरे साथ है –

'रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डल मण्डितः।
योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोद्वियोः।
प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः।।[38]

कृष्ण के इस रास के सम्बन्ध में लिखा है –

'रास रस रीति नहि बरनि आबै।
कहाँ वैसी बुद्धि, वह मन लहों, कहाँ यह चित जियै भ्रम भुलावै।

रास एक लोकनृत्य था तो छालिक्य एक शास्त्रीय रूप। कृष्ण को संगीत की पूर्ण प्रतिमूर्त्ति कहा जाता है।

गणेश –

सामान्य जीवन में भी किसी कार्य के विघ्नरहित आरंभ हेतु 'श्रीगणेश' का पूजन किया जाता है। यहॉ तक कि कार्यारंभ को 'श्री गणेश करना' क्रिया से सुशोभित करते हैं। शुभ कार्य का शुभ सम्पादन श्री गणेश अर्चन द्वारा ही सम्भव हैं। यह मगंलकारी भावना का प्रबल पर्याय बन गया।

हिन्दू धर्म–शास्त्रों में गणेश के विविध रूपों का वर्णन है। संगीत के क्षेत्र में गणेश मृदंग वादक, नर्तक भी हैं। नर्तक गणेश को नटराज शिव एवं वीणावादिणी सरस्वती के साथ स्थापित

किया जाता है। विभिन्न अवनद्ध वाद्यों के वादक गणेश–वन्दना से ही अपना वादन–कार्यक्रम आरम्भ करते हैं। विभिन्न प्रबन्ध–रचनाओं में गणेश का प्रसंग किया गया है यहाँ तक कि 21 मात्राओं वाले गणेश ताल की भी रचना की गई है। तानसेन, बैजूबाबरा के साथ–साथ अनेक संगीतज्ञों ने अपनी रचनाओं में गणेश को स्थान दिया है। तानसेन की एक रचना द्रष्टव्य है –

'तुम हो गनपत देव बुध दाता, शीश धरे गज सुंड।
जेई जेई ध्यावै तेई–तेई तावे, चंदन लेप किए भुज दण्ड।[39]

रावण –

ब्राह्मण एवं शिवभक्त होते हुए भी रावण का नाम श्रद्धा से नहीं लिया जाता। उसे आसुरी वृत्ति का नायक माना गया। परन्तु संगीत में रावण की अगाध श्रद्धा थी, इसके भी कई प्रमाण दृष्टिगोचर होते हैं –

'बाजहिं ताल परवाउज बीना
नृत्य करहिं अपछरा प्रबीना।।

तथा,

उठी रेतु रवि गयउ छपाई।
मरूत थकित वसुधा अकुलाई।
पनव निसान घोर रव बाजहिं।
प्रलय समय के घन जनु गाजहिं।।
भेरि नफीरि बाज सहनाई।
मारू राग सुभट सुखदाई।।
के हरि नाद बीर सब करहीं।
निज–निज बल पौरूष उच्चरहीं।।

अर्थ स्पष्ट है कि विभिन्न सांगीतिक वाद्यों, रागों आदि का प्रयोग राज महल में था।

पुनः,

लंका सिखर उपर आगारा।
अति विचित्र तहँ होई अखारा।।
बैठ जाइ तेहिं मंदिर रावन।
लागे किन्नर गुन गन गावन।।

शिवभक्त रावण कृत 'शिव ताण्डव स्तोत्र' का प्रथम श्लोक इसके संगीत–ज्ञान का भी परिचायक है–

'जटाटवी गलज्जलप्रवाह पावितस्थले।
गलेऽवलंव्य लंबिता भुजंग तुंगमालिकाम्।।
डमड्डमड्डमड्डमन्निनादवडडमर्वयं।
चकार चंडतांडवं तनोतु नः शिवः शिवम्।।

इसके अतिरिक्त रावण संज्ञायुक्त वाद्य 'रावणहस्त वीणा' भी सर्वविदित है। इसे 'रावणास्त्र' की भी संज्ञा प्राप्त है। यह रावण द्वारा ही निर्मित है, ऐसी मान्यता है। महाराणा कुंभा कृत 'संगीत राज' ग्रन्थ के अनुसार 'रावणहस्त वीणा' से ही सारंगी की कल्पना की गई है। 'शब्द कल्पद्रुम' में

'गदा रावणहस्तक वीणा' का उल्लेख है। लोक संगीत के कलाकार इसे 'रावणहत्था' कहते हैं। राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात आदि प्रदेशों में जहॉ नाथ–सम्प्रदाय का क्षेत्र रहा, 'रावणहत्था' का प्रयोग होता रहा। इस वाद्य के संबंध में किंवदन्ती है कि भगवान शिव को प्रसन्न करने के लिए रावण ने इस वाद्य का निर्माण किया – धनुषाकार लकड़ी पर सिर के बालों को तान कर गज बना कर बायें हाथ की नस पर घर्षण किया और एक–एक कर सैंतीस राग निरूपित किया, तब भगवान शिव प्रसन्न हुए। आज के रावणहत्था की वादन–शैली भी वैसी ही है। ऐसा प्रतीत होता है कि गज को बाएँ हाथ पर सीधा घर्षण किया जा रहा है। वाल्मीकि ने अपने रामायण में रावण के संगीतज्ञ रूप का वर्णन किया है जहाँ रावण क्रोध में भी सांगीतिक तत्त्वों की ही सहायता लेता है –

'वह राम मेरी धनुष–रूपी वीणा को नहीं जानता, जिसे मैं वाण–रूपी कोणों से बजाता हूँ। मैं संग्राम में शत्रुओं को बहाकर ले जाने वाली उस सेना–रूपी नदी में घुसकर महारंग का वादन करूँगा, जो प्रत्यंचा के घोर शब्द से गूँजती होगी, घायलों के अन्तर्नाद का स्वर जिसमें होगा और नाराचतल का नाद होगा।[40]

'उड्डीशमहामंत्रोदय तंत्र.' नामक ग्रन्थ के सोलह अध्यायों में सोलह प्रकार के भिन्न–भिन्न वाद्यों का वर्णन किया गया है जिनमें एक 'रावणहस्त' भी है – तालनिलय, सबरी, पतन, मंडल, पैरीविधन, हिमिल, धुधुक, मिथक्काथ, डमरू, मुरज, अंगुलिस्फोट, वीणा, आलमणि, रावणहस्तक, घोषवती और ब्रह्मक।

परन्तु यह रावणहस्त रावण द्वारा निर्मित होने के बाद भी उत्तर भारत में ही प्रचलित है, न कि दक्षिण भारत में। ध्यातव्य है कि रावण का क्षेत्र 'लंका' दक्षिण भारत में है।

छत्तीसगढ़ के गोंड़ शासक 'रावणवंशी' कहलाते थे। गोंड शासकों में सर्वाधिक प्रतापी संग्रामसिंह थे। तत्कालीन सिक्कों पर पुलस्त्यवंश अंकित है जिसका कारण गोड़ राजाओं का 'रावणवंशी' कहलाना है। परन्तु चक्रधर सिंह के अतिरिक्त किसी भी राजा को संगीत के प्रति रूचि नही थी।

जैन धर्मावलम्बी आचार्य हेमचन्द्र सूरि कृत 'जैन रामायण' में मंदिर में मन्दोदरी के नृत्य एवं रावण के वीणा–वादन का वर्णन है –

'समाकृष्य स्नसां तंत्रीं प्रभृज्य च दशाननः।
महासाहसिको भक्त्या भुजवीणाभवादयत्।।
उपवीणयति ग्रामरागरम्यं दशानने।
गायत्यंतः पुरे चास्य सप्तस्वरमनोरमम्।।

वीणा–वादन के क्रम में तार टूट जाने पर रावण द्वारा अपने जंघा का नस खींच कर त्वरित गति से वीणा में जोड़कर अखण्ड–वादन से प्रसन्न होकर भगवान ने 'अमोघ विजया शक्ति' एवं 'रूपविकरिणी विद्या' का वरदान दिया, ऐसा भी यहाँ उद्धरण है।[41]

आंजनेय – आंजनेय को अनिलसुत, मरूत्सुत, हनुमान् आदि संज्ञा से भी संबोधित किया गया है। रामभक्त हनुमान् वाल्मीकि रामायण के नेता थे। ऋग्वेद और सामवेद पर इनका पूर्ण अधिकार था। वे व्याकरण के भी आचार्य थे –

'नृग्वेद विनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।

नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्।।[42]

वाल्मीकि रामायण में हनुमान् की प्रसिद्धि संगीताचार्य के रूप में हुई है –

'नूनं व्याकरणं कृत्स्नेन बहुधा श्रुतम् बहु व्याहरताडनेन न किंचिदपशब्दितम्।
न मुखे नेत्रयोश्चापि ललाटे चभ्रुवोस्तथा। अन्येष्वपि च सर्वेषु दोषः संविदितः क्वचित्।।
अविस्तारभसन्दिग्धमविलम्बितमव्यथम। उरस्थं कण्ठगं वाक्यं वर्तते मध्यमस्वरम्।।
संस्कारक्रमसम्पत्रामद्भुताविलम्बिताम्। उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहर्षिणीम्।
अनया चित्रयावाचा त्रिस्थानत्यंजनस्थया। कस्य नाराध्यते चित्तमुद्यतासेररेरपि।।[43]

अर्थात – भगवान राम कहते हैं कि जिस प्रकार हनुमान् ने सम्भाषण किया, उस प्रकार वह व्यक्ति नहीं कर सकता जिसने ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद का अध्ययन विधिपूर्वक विनीत भाव से न किया हो। अवश्य ही, हनुमान ने समस्त व्याकरण गुरूमुख से पढ़ा है क्योंकि समस्त सम्भाषण में कहीं भी त्रुटि नहीं हुई, मुख, नेत्र, ललाट और भौंह में कहीं दोष नहीं दिखाई दिया। उन्होंने वाणी में हृदयस्थित और कण्ठस्थित मध्यम स्वर का आश्रय लिया। इनके वाक्य अव्यर्थ, असन्दिग्ध, अविलम्वित और अनायास रहे। यदि अनुमान् पर कोई तलवार ताने खड़ा हो, तो भी ये उर, कण्ठ और मूर्धा नामक स्थानों से व्यक्त की हुई अपनी विलक्षण वाणी के द्वारा उसे वशीभूत कर लेंगे।[44]

उनकी वाणी तीनों स्थानों (मन्द्र, मध्य, तार) में कुशल थी।

भारतीय संगीत शास्त्र में हुनमन्मत के प्रवर्त्तक हुनमान का उल्लेख मिलता है। ये हनुमान् या आंजनेय या मरूत्सुत कौन थे अथवा कहाँ के थे, यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है परन्तु कई संगीत शास्त्रकारों ने अपने–अपने ग्रन्थ में हनुमान अथवा इनके मत का उल्लेख किया है। इससे ज्ञात होता है कि आन्जनेय के हनुमन्मत या उसके प्रतिवादक ग्रन्थ का अस्तित्व अवश्य था।

17वीं शताब्दी के ग्रन्थ 'संगीत सुधा' में हनुमान को देशी रागों में याष्टिक का शिष्य कहा गया है। उन्होंने याष्टिक एवं यक्ष समूह गान शैली के आधार पर शास्त्र रचना की।[45]

शारंगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर' की कल्लिनाथ टीका में उद्धृत है कि आंजनेय के अनुसार जिन रागों में श्रुति, स्वर, ग्राम जाति–सम्बन्धी नियम नहीं होते और विभिन्न देशों की गतिकारक छाया आती है, वे देशी राग हैं –

येषां श्रुतिस्वरग्रामजात्यादिनियमो नहि।
नानादेशगतिच्छाया देशीरागास्तु ते स्मृताः।।'

राम कृ ष्ण कवि कृत 'भरत कोष' के अनुसार, हनुमन्त की अठारह श्रुतियाँ है। 'आंजनेयसंहिता', 'हनुमत्संहिता', 'भरतरत्नाकर' इत्यादि को आंजनेय के सिद्धांतों का प्रतिपादक ग्रन्थ कहा गया है परन्तु इन ग्रन्थों में आंजनेय कृत मूल ग्रन्थ की सामग्री का प्रामाणिकता ज्ञात नहीं होती। ये ग्रन्थ तेरहवीं शताब्दी तक प्रचलित रहे परन्तु आज ये ग्रन्थ अनुपलब्ध है।

सोलहवीं शताब्दी का 'संगीत दर्पण', जिसके रचयिता दामोदर पंडित हैं, हनुमन्मत का ही है।

भारतीय संगीत में मार्गी और देशी दो प्रकार का संगीत माना गया है। 'प्रो0 रामकृष्ण कवि के अनुसार आंजनेय ने देशी संगीत पर विचार किया था। इन्हें देशी संगीत पर अपना मत प्रकट

करने की प्रेरणा कैसे हुई, इस विषय पर एक मनोरंजक घटना का उल्लेख है। मेल–पद्धति के विचारक एवं 'संगीत सुधा' नामक ग्रन्थ के रचयिता रघुनाथ के अनुसार, एक बार आंजनेय कदलीवन में पहुंचे, यहाँ याष्टिकुनि अपने दक्ष आदि शिष्यों को शिक्षा दे रहे थे। देशी रागों तथा उनके स्वरों की श्रुतियों में शास्त्रवर्णित स्थिति से विरोध देखकर दक्ष आदि शिष्यों ने याष्टिक मुनि से पूछा कि सप्त शुद्ध एवं द्वादश विकृत स्वरों में एक स्वर की अधिक–से–अधिक चार (एवं कम–से–कम दो) श्रुतियाँ हैं। परन्तु देशी रागों में पंचश्रुति, षट्श्रुति एवं सप्त श्रुतिस्वर भी हैं। इन स्वरों का शास्त्र से विरोध है। परन्तु इनके परित्र्याग से राग लाभ नहीं होगा।

इस प्रकार विरोध–संबधी शंका किए जाने पर याष्टिक मुनि ने इस प्रकर समाधान किया कि शास्त्र–विरोध भी न रहा और राग प्राप्ति भी संभव हो गई।

याष्टिक के शिष्यों की गायन–शैली एवं याष्टिक मुनि द्वारा उपदिष्ट पद्धति थे ध्यान में रखकर आंजनेय ने लक्ष्या–विरोधी शास्त्र की रचना की।[46]

आंजनेय या हनुमान ने उपरोक्त घटना से प्रेरणा पाकर प्रचलित श्रुति–संख्या– नियम को छोड़कर किन्हीं स्वरों का पंचश्रुतिकत्त्व, षट्श्रुतिकत्व यथेच्छ रूप में ग्रहण किया तथा लौकिक विनोद के लिए अनेक प्रकार के देशी रागों की सृष्टि की। इनके मत का प्रतिपादक ग्रन्थ 'हनुमत्संहिता', 'आंजनेय संहिता' तथा 'भरत रत्नाकर' आदि नामों से प्रसिद्ध हुआ और तेरहवीं शताब्दी तक के संगीत शास्त्रियों को इस ग्रन्थ की जानकारी रही किन्तु आज यह ग्रन्थ किसी रूप में प्राप्त नही है।[47]

यह भी सम्भव है कि ये ग्रन्थ किसी अन्जान स्थान पर पड़े हो अथवा कहीं ऐसी जगह ऐसी अवस्था में हों कि उनके रचनाकार अथवा ग्रन्थ का नाम उपलब्ध नहीं हो पा रहा है, इसे अन्वेषण की आवश्यकता है। ऐसा ही एक अनुमान्य ग्रन्थ जीर्ण–शीर्ण अवस्था में श्री महेश कुमार मिश्र को प्राप्त हुआ था जो हनुमान के राग–रागिनियों का परिचायक था और जिसका विस्तृत वर्णन श्री मिश्र ने संगीत पत्रिका के फरवरी 1972 अंक में किया था।

संदर्भ सूची :–

1. शारदातनय भावप्रकाश, पृ0 – 47.
2. शर्मा, एच0 बि0, भरत नाट्यशास्त्र से पूर्व की कृतियॉ, संगीत, सितम्बर, 2001, पृ0 – 19–22.
3. नाट्यशास्त्र, अध्याय –1, श्लोक – 7
4. नाट्यशास्त्र, अध्याय –1, श्लोक – 1
5. मत्स्यपुराण 3/2–4
6. खॉ, मु0 इसराइल, सरस्वती की पौराणिक उत्पत्ति, संगीत, नव. 2003, पृ0 – 4.
7. वही, मत्स्यपुराण, 3/5–8
8. ब्रह्मवैवर्त पुराण, 1/3/54–57
9. वही 2/4/12
10. ब्रह्मवैवर्त पुराण (2/1/1 से आगे) (उद्धत – खॉ, डॉ मु0 इसराइल, सरस्वती की पौराणिक उत्पत्ति, संगीत नवम्बर 2003, पृ0 – 3)
11. मत्स्य पुराण, 3/30–43
12. ब्रह्मवैवर्तपुराण 2/2/59
13. मत्स्यपुराण, 3/30–32
14. वही (171/32–36)
15. वायु पुराण 23/37–38

16. ब्रह्माण्ड पुराण, 4 / 40 / 5
17. शुक्ल, आचार्य बद्रीनाथ, मार्कण्डेयपुराणः एक अध्ययन, 1960 वाराणसी, पृ094–95
18. राय, टी0 ए0 गोपीनाथ, एलिमेण्ट्स ऑफ हिन्दू आइकोलोग्राफी, भाग 1(1914, मद्रास, पृ0 335–336 (उद्धृत, खॉ, मु0 इसराइल, सरस्वती की पौराणिक उत्पत्ति संगीत, नवम्बर 2003)
19. शतपथ, ब्राह्मण, तैतरीय ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण, ताण्डव, ब्राह्मण, गायेथ ब्राह्मण
20. पद्म पुराण, स्कन्द पुराण, मार्कण्डेयपुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, ब्रहमवैवर्त पुराण भागवत पुराण 3 / 12 / 26
21. भागवत पुराण, 3 / 12 / 26
22. शाह, प्रिय बाला, विष्णुधमोत्तर पुराण, भाग – 3, पृ0 – 140
23. भट्टाचार्य, डॉ0 रमाशंकर, पुराणगत वेदविषयक सामग्री का समीक्षात्मक अध्ययन, (प्रयाग, 1965) पृ0 – 122, 378–379.
24. भागवत 10 / 15 / 13
25. भागवत 10 / 11 / 39
26. नारदीय शिक्षा 1 / 5 / 1
27. भागवत 10 / 21 / 15
28. हरिवंशपुराण, विष्णु पर्व, 67 / अध्याय 89
29. वही, 72 अध्याय 89
30. विष्णु पर्व, अध्याय 89, श्लोक 94
31. वही, श्लोक 77–78
32. वही अध्याय 89 श्लोक 81
33. साहित्य दर्पण, परिच्छेद, 6, श्लोक 307
34. हरिवंशपुराण, विष्णुपर्व, अध्याय, 89 पृ0 – 574, गीता प्रेस, गोरखपुर
35. त्रैलोक्य दीपक नाम संगीत शास्त्र का 75वॉ अध्याय, केदार खण्ड, स्कन्द पुराण
36. सहस्त्रबुद्धे, आर्यमा, भागवत के संगीत मर्मज्ञ पात्र कृष्ण, संगीत, जून 2008, पृ0 – 44
37. भागवत, 10 / 16 / 30
38. भागवत 10 / 33 / 3
39. गुप्ता, जयराज, संगीत कला के प्रतीक गणेश, संगीत, सितम्बर, 1983, पृ0 – 42
40. वाल्मीकि रामायण,(उद्धृत–आचार्य वृहस्पति,वालमीकि और संगीत, संगीत, फरवरी 1968 पृ0–7)
41. आचार्य हेमचन्द्र सूरि, जैन रामायण, श्लोक – 265 से 277 (उद्धृत सरस पंडित, डॉ0 प्यारेलाल श्रीमाल, भारतीय दृष्टि में रावण संगीतज्ञ था, संगीत, अक्टूबर 1985, पृ0 16–20)
42 वाल्मीकि रामायण, किष्किनधा काण्ड, सर्ग – 3, श्लोक 25.
43 वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धा काण्ड, सर्ग 3, श्लोक 29–30
44 वही, उद्धृत वृहस्पति, आचार्य, वाल्मीकि और संगीत, संगीत, फरवरी 1968, पृ0 – 7.
45 भरत कोष, पृ0 7 453.
46 मिश्र, महेश कुमार, हनुमन्मत के राग रागिनी, संगीत, फरवरी 1972, पृ0 – 15
47 आचार्य वृहस्पति भरत का संगीत सिद्धांत पृ0 – 279 (उद्धृत मिश्र, महेश कुमार, हनुमन्मत के राग–रागिनी, संगीत, फरवरी 1972 पृ0 15